भारतीय दर्षन में शब्दतत्त्व की अवधारणा

डॉ0 महेष्वर मिश्र
सहायक प्रोफेसर, दर्षन विभाग
कोषी कॉलेज, खगड़िया
(तिलकामांझी भागलपुर विष्वविद्यालय)
सम्प्रति–Associate, IIAS, Shimla
(01-05-2012 to 31-05-2012)

सारांष

भारतीय दर्षन में शब्द मात्र अभिव्यक्ति और अनुभूति के साधन ही नहीं हैं, अपितु इन्हें दार्षनिक प्रपत्तियों, आध्यात्मिक अनुभूतियों तथा विष्व–व्यवस्था के एक अनिवार्य उपकरण के रूप में ग्रहण किया गया है। यहाँ नादब्रह्म के साथ शब्दब्रह्म की अवधारणा इसी निमित्त हुई है। यहाँ शब्द वर्णों के समाहार– मात्र नहीं हैं, अपितु परा, पष्यन्ती, मध्यमा और वैखरी की गहन यौगिक अनुभूतियाँ भी हैं। शब्द और अर्थ–पद और पदार्थ– अनुभूति और अभिव्यक्ति, मन्तव्य और वक्तव्य, आन्तरिक आनुभूतिक सृजन और बाह्य् रूपांकन आदि की एक विराट् प्रक्रिया को शब्द संयोजित करता है। शब्द और वाक्य पर इसी कारण हमारे दार्षनिकों ने इतना गहन विवेचन किया है। पाणिनि और पतंजलि से लेकर शंकर, कुमारिल भट्ट, भर्तृहरि, अभिनवगुप्त आदि तक की इसकी अविच्छन्न परम्परा विद्यमान रही है।

सारा संसार शब्दाधीन है। शब्द आकाष का गुण है। आकाष से वायु की उत्पत्ति होती है। वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी अवतरित होती है। पृथ्वी से स्थावर और जंगम समस्त भौतिक तत्त्वों का विकास होता है। तात्पर्य यह कि शब्दतत्त्व से ही इस सृष्टि का विकास होता है और अन्ततः उसी में उसका विलय हो जाता है।

भारतीय दर्षन में शब्दतत्त्व की अवधारणा

डॉ0 महेष्वर मिश्र
सहायक प्रोफेसर, दर्षन विभाग
कोषी कॉलेज, खगड़िया
(तिलकामांझी भागलपुर विष्वविद्यालय)
सम्प्रति–Associate, IIAS, Shimla
(01-05-2012 to 31-05-2012)

इस शब्दप्रप×चात्मक जगत् में जो कुछ श्रवणीय या दर्षनीय है, वह शब्द का परिणाम है। क्योंकि यह सम्पूर्ण विष्व छन्द (वेद) से ही उत्पन्न है। जैसा कि श्रुति का वचन है – '' एष वै छन्दस्यः साममयः प्रथमो क्षन् वैराजः पुरुषः योऽन्नमसृजत्, तस्मात् पषवोऽजायन्त पषुभ्यो वनस्पतयो वनस्पतिभ्योऽग्निः'' ''स उ एषैव ऋड्मयो यजुर्मयः साममयो वैराजः पुरुषः '' ''वागेव विष्वा भुवनानि यज्ञे'' '' स भूरिति व्याहरत् भूमिमसृजत् इति''[1] अर्थात् इसी छन्द से सामरूप प्रथम विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसने अन्न की सृष्टि की, उससे पषु, पषु से वनस्पति और वनस्पति से अग्नि की उत्पत्ति हुई। वही पुरुष ऋक्, यजु और साममय विराट् पुरुष के रूप में विख्यात है। यज्ञ में वाणी (षब्द) के द्वारा ही भुवन (पुरुष) को बुलाया जाता है। उस भुवन ने ही भूमि की रचना की।

शब्द का साम्राज्य इतना विस्तृत है कि सारा संसार इसमें समाया हुआ है। विष्व की ऐसी कोई भी भाषा नहीं जिसमें शब्द का अस्तित्व न हो। इसका प्रयोग–क्षेत्र इतना व्यापक है कि संसार की कोई भी सत्ता इसकी पहुँच से बाहर नहीं है। यह गोचर–अगोचर जगत् के दृष्य एवं अदृष्य सभी तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता है। शब्दों की इसी व्यापकता के कारण लोक में वस्तुबोध के लिए उनका प्रयोग होता है। [2] इसमें सप्तद्वीपा वसुमति, तीनों लोक और चारो वेद के रहस्य को रूपायित करने की क्षमता है।[3] तात्पर्य यह कि शब्द का स्वरूप अपरिमेय है जिसमें अस्तित्व– अनस्तित्व, भाव–अभाव सब कुछ समाया हुआ है।

पंतजलि शब्द के स्वरूप–चित्रण के सम्बन्ध में एक प्रष्न उठाते हैं – 'अथ गौरित्य कः शब्दः' अर्थात् यह जो 'गौ' है, इसमें शब्द क्या है ? सामान्यतः लोग 'गौ' शब्द और 'गौ' द्रव्य के पार्थक्य को समझ नहीं पाते। अतः वे इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

'येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्यो भवति स शब्द।'[4] 'अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि शब्दः'

अर्थात् जिसके उच्चारण से गलमांस, पूँछ, कन्धा, खुर, सींग आदि का ज्ञान स्वतः हो जाता है – वह शब्द है। अथवा किसी पदार्थ की प्रतीति के लिए संसार में उच्चरित ध्वनि ही शब्द है। इस रूप में ध्वनि और स्फोट का अभेद्य सम्बन्ध प्रतिपादित हुआ है। अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिसकी उपलब्धि श्रवणेन्द्रियों द्वारा होती है, बुद्धि जिसको ग्रहण करती है, जिसका स्थान आकाष है और जो प्रयोग द्वारा अभिज्वलित अर्थात् अर्थवान होता है, वही शब्द है। [5]

भारतीय परम्परा में शब्द–तत्त्व–चिन्तन का उत्स प्राचीनतम वैदिक ग्रन्थ है जहाँ तीन प्रकार से आबद्ध चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ वाले महादेव रूप वृषभ का अत्यन्त शब्द करते हुए मर्त्यलोक में प्रवेष करने की परिकल्पना है। [6]
निरूक्तकार यास्क ने इस महान् देव को यज्ञ के रूप में रूपायित किया है।[7] महाभाष्य पतंजलि ने इस महान् देव को शब्दब्रह्म मानकर इस प्रकार व्याख्यायित किया है कि उसके चार सींग नाम, आख्यात्, उपसर्ग और नियात हैं। चित् और अचित् स्वरूप स्फोट एवं ध्वनि उसके दो सिर हैं। सात प्रकार की विभक्तियाँ उसके सात हाथ हैं। वह हृदय, कंठ तथा सिर तीन स्थानों पर आबद्ध है। उसे वृषभ कहा गया है, क्योंकि वह अर्थतत्त्व की वर्षा करता है। वह अक्षर महादेव शब्द मानव के अन्तर में समाविष्ट है। वह नित्य, कूटस्थ और अविचाली है। उसमें किसी प्रकार का क्षय और विकार नहीं होता है। [8]

औपनिषदिक परिकल्पना के अनुसार पुरुष का सार वाक्तत्त्व, वाक्तत्त्व का सार ऋग्वेद, ऋग्वेद का सार सामवेद और सामवेद का सार उद्गीथ है। उद्गीथ ही ओम है जो अक्षर और उपासनीय है।[9] शाकपूणि के अनुसार ओम् ही वाकतत्त्व है।[10] सृष्टि के पूर्व एकाकी ब्रह्म जब गहन चिन्तन में लीन थे, तो उनके हृदय में प्रणव का उदय हुआ। वह प्रणव गायत्री के रूप में व्यक्त हुआ। गायत्री से त्रिवेद की उत्पत्ति हुई। पुनः इन्हीं से सारे भौतिक जगत् का आविर्भाव हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि शब्दब्रह्म से ही संसार की सृस्टि हुई।

भर्तृहरि की परिकल्पना

वाक्यपदीय के प्रथम कांड का नाम ब्रह्मकांड है। इस कांड में शब्दब्रह्म का विषद् विवेचन हुआ है। भर्तृहरि जब शब्द को ब्रह्म कहते हैं, जब वे ब्रह्म की समस्त मान्यताओं को उस पर आरोपित करते हैं। इस प्रकाष में देखने पर प्रथम कांड में आयी हुई समस्त युक्तियाँ दर्षन के ब्रह्म पर घटित हुई दीखती है। [11] ग्रन्थ के आरम्भ में ही कहा गया है –

'' अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। [12]

जिस प्रकार ब्रह्म सर्वषक्तिमान होकर भी स्वयं आकृतिविहीन है, उसी प्रकार शब्द का वास्तविक स्वरूप उसका बाहरी स्वरूप नहीं, बल्कि अन्तर्भावना या अन्तष्चेतना है।[13]

यहाँ शब्दतत्त्व के लिए जिस प्रकार वेदान्त के 'ब्रह्म' का उपयोग हुआ है, उसी प्रकार विवर्त भी वेदान्त से ही गृहीत है। वेदान्त में विर्वत के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की सभी प्रक्रियाओं का अन्तर्ग्रहण होता है।[14] तात्पर्य यह है कि ब्रह्म की विवर्तषक्ति द्वारा ही यह जगत् अर्थ रूप में परिणत होता है और कालान्तर में पुनः उसी में विलीन हो जाता है।

यास्क की मान्यता

यास्क की मान्यता है कि शब्द आकाष का गुण है। आकाष से वायु की उत्पत्ति होती है। वायु में दो गुण हैं – शब्द और स्पर्ष। वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि में तीन गुण हैं – शब्द, स्पर्ष और रूप। अग्नि से जल की उत्पत्ति होती है। जल में चार गुण हैं – शब्द, स्पर्ष, रूप और रस। जल से पृथ्वी अवतरित होती है। पृथ्वी में पाँच गुण हैं– शब्द, स्पर्ष, रूप, रस और गंध। पृथ्वी के स्थावर और जंगम समस्त भौतिक तत्त्वों का विकास होता है। यह जागरण काल सहस्र युग का होता है। उसके अंत में सुषुप्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। जिसमें अंगों का प्रत्याहार या संकोच होने लगता है। प्रल्यावस्था में भौतिक तत्त्व पृथ्वी में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, मनस्तत्त्व विद्या में, विद्या महान् आत्मा में और महान् आत्मा प्रतिभा में विलीन हो जाती है, यह रात्रि या सुषुप्ति भी एक सहस्र युग की होती है। इसी प्रकार दिवस और रात्रि अर्थात् सृष्टि और प्रलय का क्रम चलता रहता है। तात्पर्य यह कि शब्दतत्त्व से ही इस सृष्टि का विवास होता है और अन्ततः उसी में उसका विलय हो जाता है। यही परमतत्त्व परब्रह्म परमेष्वर है। उसी का वाचक प्रणव है।

नागेष भट्ट की परिकल्पना

नागेष भट्ट की शब्दब्रह्म की परिकल्पना भर्तृहरि से भिन्न है। उनकी शब्दब्रह्म की व्याख्या तांत्रिक मान्यताओं पर आधारित है, जिसके अनुसार प्रलयकाल में प्राणिमात्र का क्षय हो जाता है। जगत् माया में और माया ईष्वर में विलीन हो जाती है। पुनः जब प्राणियों के कर्म अपरिपक्वास्था से कालान्तर में परिपक्वास्था को प्राप्त करते हैं, तब उनको फल प्रदान करने के लिए परब्रह्म को सृष्टि करने की इच्छा होती है। ब्रह्म की सृष्टि करने की यह इच्छा ही जगत् की सिसृक्षात्मिका वृत्ति माया है। मायावृत्ति से अव्यक्त त्रिगुण विन्दु उत्पन्न होता है। यही शक्ति तत्त्व है। इसे महाविन्दु भी कहते हैं। इस महाविन्दु में तीन अंष हैं। इसके चिदंष का नाम 'विन्दु ' है। अचिदंष को 'बीज' और चिद्चिन्मयाश्रित अंष को 'नाद' कहा गया है।

ष्बब्दमय जगत् की सृष्टि का उपादान कारण विन्दु या ब्रह्म है। विन्दु के चिदंष को षिव, अचिदंष को शक्ति और चिदचिदंष को षिव–षक्तिमय कहा गया है। इसके षिवांष का नाम 'विन्दु' शक्ति अंष का नाम 'बीज' और उन दोनों के परस्पर समवाय रूप सम्बन्ध का नाम 'नाद' है। इन तीनों अंषों से तीनों शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। 'विन्दु' से रौद्री, 'नाद' से 'ज्येष्ठा' और बीज से 'वामा' शक्ति उत्पन्न होती है। इन्हीं तीनों शक्तियों से क्रमषः ज्ञान, इच्छा और क्रिया की उत्पत्ति होती है। इन्हीं तीनों शक्तियों से रूद्र, ब्रह्मा और विष्णु का प्रादुर्भाव होता है।[15] अन्य तंत्र ग्रन्थों में भी इसी रहस्य को थोड़ा शाब्दिक अन्तर के साथ स्थापित किया गया है। तात्पर्य यह है कि नाद चिदंष शब्द और अचिदंष अर्थ का समवाय है।

यह जो विष्व का दिक् है – यही 'अपर' साम्य है। यही विन्दु है – महाविन्दु है। यहाँ षिव और शक्ति, ब्रह्म और माया, पुरुष और प्रकृति समरस हैं– एकाकार हैं। यह नित्य अवस्था है।[16] जब यह साम्य भंग होता है अर्थात् स्तर के अनुसार विष्व क आविर्भाव होता है, तब यह विन्दु ही शक्ति अंष में परिणाम लाभ करता है और षिवंष में साक्षी रहता है। साक्षी परिणामी और एक है, किन्तु शक्ति क्रमषः स्तर–स्तर में फैलती रहती है।[17] तात्पर्य यह कि अव्यक्त नाद स्थित शब्द निरपेक्ष द्रष्टा है। सृष्टि और प्रलय, उत्पत्ति और नाष, प्रादुर्भाव और तिरोभाव के मध्य जो प्रसार और संकोच की प्रक्रिया चलती रहती है वह उसके बीजांष अर्थ शक्ति का परिणाम है।

शक्ति और शक्तिमान (षिव) में कुछ भेद नहीं है। इन दोनों में उसी प्रकार तादात्म्य है, जिस प्रकार अग्नि और दाहकत्व शक्ति में।[18] महाकवि कालिदास रघुवंष के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में कहते हैं –

''वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती–परमेष्वरौ।। [19]

षिव और शक्ति वागर्थ रूप में पूर्णतः सम्मृक्त है। उनकी इसी स्थिति को ध्यान में रखकर अर्द्धनारीष्वर की परिकल्पना की गयी है। इसी संयुक्त शक्ति से जगत् का आविर्भाव होता है और उसी में तिरोभाव भी। तात्पर्य यह है कि जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार की सारी प्रक्रिया संयुक्त शक्ति से सम्बद्ध है।

सिद्धान्त शैव का मत है कि 'विन्दु' की शक्ति का नाम विकल्प है। उसे ही आश्रय बनाकर षिव शुद्ध विन्दु को क्षुब्ध करते हैं। उससे शब्द और अर्थ सृष्टि की धारा उत्पन्न होती है। वह शब्द धारा क्रम से परा, पष्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में है।[20] वैयाकरण भी इसी सत्य हो स्वीकारते हैं कि शब्दार्थमय अव्यक्त विन्दु ही शब्दब्रह्म है जिसकी अभिव्यक्ति चार चरणों में होती है। शब्दब्रह्म को परावाक् कहा गया है।

जगत् का उपादान–कारण विन्दु रूप–ष्बब्दब्रह्म प्राणियों के मूलाधारचक्र में स्थित है। उसे ही वैयाकरण परावाक् कहते हैं। परावाक् अन्तर्ज्योति स्वरूप और अनपायिनी (अचल) है। योगावस्था की निर्विकल्प समाधि में ही इसका साक्षात्कार होता है।

अभिव्यक्ति का विविक्षाजन्य–प्रयत्न संस्कृत पवन है। परावाक्– रूप नाद जब संस्कृत पवन से प्रेरित होकर मूलाधार से उठकर नाभि प्रदेष स्थित मणिपूरचक्र में पहुँचता है, जो उसकी स्थिति मयुराण्ड रस की तरह अविभाग और अक्रम होती है। वाक् अर्थात् वाणी की इस अवस्था का नाम पष्यन्ती है। इसका साक्षात्कार योगावस्था की सविकल्प समाधि में होता है। पष्यन्ती वाक् जब नाभि से उठकर हृदयस्थ अनाहत चक्र तक पहुँचता है तो प्राण और बुद्धि से संयुक्त होकर मध्यमा वाक् कहलाता है। इस अवस्था में शब्द और अर्थ का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है और वह बुद्धि से ग्राह्य होता है। किन्तु श्रवणेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं होता है। पष्यन्ती अवस्था से जब वाक् कंठस्थित विषुद्धिचक्र में पहुँचता है, तो वाक् यंत्रों से वायु विकृत होकर वर्णों का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। वाक् की इसी अवस्था को वैखरी कहा जाता है। यही मनुष्य मात्र को सुलभ है। [21] वाक्तत्त्व की इन चारों अवस्थाओं को मानव शरीर पर आरोपित किया गया है। परावाक् मूलाधार चक्र में स्थित है। पष्यन्ती की स्थिति नाभि प्रदेष में है।

मध्यमा हृदय और बैखरी कंठ देष में अवस्थित है।[22] सृष्टि क्रम में शब्द की गति परावाक् से वैखरी की ओर होती है। साधना क्रम में संहार या प्रत्याहार की धारा वैखरी से परावाक् की ओर प्रवाहित होती है।

तंत्र परम्परा में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विषुद्धि और आज्ञाचक्र नाम षट्चक्रों की परिकल्पना मानव शरीर में की गयी है – और उनका स्थान क्रमषः मूलाधार, लिंगमूल, नाभिप्रदेष, हृदय, कंठ एवं भ्रूमध्य स्थित ब्रह्मरंध्र निर्धारित किया गया है।[23] प्रत्येक चक्र में एक–एक कमल की कल्पना की गयी है, जिसके अनुसार आधारचक्र में चतुर्दल, लिंगमूल में षट्दल, नाभि में दषदल, हृदय में द्वादषदल, कंठ में षोड्षदल और ललाट में द्विदल कमल स्थित है। प्रत्येक कमलदल में नाद एवं ज्योतिरूप एक–एक वर्ण का अविर्भाव होता है। आधार चक्रवाले चतुर्दल कमल से व,ष,ष एवं स, लिंगमूलस्थ षट्दल कमल से ब,भ,म,य,र एवं ल, नाभिस्थ दषदल कमल से ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, एवं फ, हृदयस्थ द्वादष दल कमल से क,ख,ग,घ,ड., च, छ, ज, झ, ञ, ट एवं ठ, कंठ देषस्थ षोडष दल कमल से अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं एवं अः और ललाटस्थ द्विदल कमल से हं एवं क्षं की उत्पत्ति होती है।[24] 'अ' से 'ह' तक जो पचास मातृका समष्टि रूप से अवस्थित है, वही महामंडल भातृका मंडल है। तंत्र परम्परा में यही शब्दब्रह्म का विवर्त रूप है। सहस्र चक्र में यही मात्रिका मंडल बीस फेरा लगाते हैं। तात्पर्य यह कि सहस्रदल कमल की एक हजार पंखुड़ियों पर मात्रिका मंडल के एक वर्ण की बीस आवृति होती है।

भारतीय शब्दतत्त्व चिन्तन की सबसे विषेषता यह है कि इसमें एक ओर शब्द, अर्थ और ज्ञान अर्थात् शब्द, वस्तु और अर्थ जहाँ पूर्णतः भौतिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित है, वहाँ दूसरी ओर उसकी विवेचना जगत् के उपादान कारण परम निरपेक्ष सत्ता की सापेक्षता में भी है। शब्द जहाँ ब्रह्म का वाचक है और अर्थ जगत् का प्रतीक,

वहीं ज्ञान दोनों से सम्बद्ध है। इस प्रकार शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनों आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। उनकी यह परस्परता ही भ्रम का कारण है, माया है।

भौतिक ज्ञान मौलिक रूप से शब्द और वस्तु सापेक्ष है। शब्द और वस्तुपरक ज्ञान हमारे सुख–दुःख का कारण है। योगियों का ज्ञान शब्द और वस्तु से नहीं होता है। यही कारण है कि स्तुति और निन्दा उनके मन को आन्दोलित नहीं करती है। तात्पर्य यह कि शब्द, अर्थ और ज्ञान के अवास्तविक एकत्व से भ्रम उत्पन्न होता है और मनुष्य माया से आभ्रान्त हो जाता है। इसके विपरीत यौगिक क्रियाओं के द्वारा उनके पृथककरण से आत्म साक्षात्कार एवं आत्मबोध होता है। इस प्रकार शब्दब्रह्म में निष्णात होते हैं वे परब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

पादटिप्पणियाँ –

1. उद्धृत, वाक्यपदीय, ब्रह्मकांड, कारिका 120
2. निरुक्त, 2/1
3. महाभाष्य, 1/1/1
4. महाभाष्य, 1/1/1
5. उपरिवत् 2/1/1
6. ऋग्वेद, 4/58/3
7. निरुक्त, 13/7
8. महाभाष्य, 1/1/2
9. छन्दोग्य उपनिषद्
10. निरुक्त, 10/1
11. वर्मा सत्यकाम, : वाक्यपदीय, प्रास्ताविक, पृ0 'च'
12. वाक्यपदीय 1/1
13. वर्मा, सम्यकाम : वाक्यदीप, प्रास्तविक, पृ0 'च'
14. उपरिवत्, पृ0 1
15. शारदा तिलकः पाठक, रंगनाथ : स्फोटदर्षन, पृ0 9
16. कविराज, गोपी नाथ : तांत्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ0 197
17. उपरिवत्
18. अभिनव गुप्तः तंत्रालोक, पाठक, रंगनाथः स्फोटदर्षन, पृ0 173
19. रघुवंष, 1/1
20. शुक्ल, सूर्यनारायण, वाक्यपदीप, भूमिका, पृ0 15
21. व्याकरण सिद्धान्त मंजूषा, पृ0 108–80 त्रिपाठी, राम सुरेषः संस्कृत व्याकरणदर्षन पृ0 473.
22. पाठक् रंगनाथ, स्फोट दर्षन, पृ0 22
23. उपरिवत्, पृ0 252
24. योग सूत्रभाष्य, स्फोटदर्षन, पृ0 44 एवं Avalon, Arthur : Maha Nirvana Tantra, P-57-62.

***